2. निर्गुण प्रेम मार्गी सूफ़ी संत कवि एवं उनका काव्य, ज्ञान मार्गी संत काव्य धारा एवं निर्गुण प्रेम मार्गी सूफ़ी संत काव्य धारा में साम्य एवं वैषम्य

डॉ. आभा रानी*

साम्य :

1. निर्गुण, निराकार ब्रह्म पर विश्वास

कबीर, नानक, दादू आदि संत कवि और प्रेममार्गी सूफी कवि निर्गुण निराकार ब्रह्म पर समान रूप से विश्वास करते है। कबीर अपनी आत्मा को प्रेमिका के रूप में और ब्रह्मा को अपने प्रियतम राम के रूप में कल्पित करते हैं। जबकि जासी अपनी आत्मा को पुरूष रूप में और अपने आराध्य खुदा या अल्लाह को प्रियतमा के रूप में देखते हैं। दोनों में समान रूप से अपने आराध्य को पाने की लगन है।

कबीर ने अपने इसी आराध्य के संबंध में कहा है–

अलख निरंजन लखै न कोई। निरमै निराकार है सोइ।
सुनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्ट अर्दिष्ट छिप्यों नहीं पेखा।।
अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथणा जाई।
नाति सरूप मरण नही जाके, घटि–घटि रहो समाई।।

जायसी के पद्मावत में अद्वैतवाद की झलक स्थान–स्थान पर दिखायी देती है। अद्वैत वाद के अन्तर्गत दो प्रकार के द्वैत का त्याग किया जाता है। आत्मा और परमात्मा के द्वैत का तथा ब्रह्म और जड़ जगत के द्वैत का। इनमें से सूफियों का

जोर पहले मत पर ही है। यजुर्वेद के वृहरारव्यक उपनिषद का 'अहं ब्राह्मास्मि' वाक्य जिस प्रकार की एकता और अपरिछिन्न्ता का प्रतिपादन करता है। उसी प्रकार सूफियों का 'अनलहक'वाक्य भी। इस अद्वैतवाद के मार्ग में अहंकार बाधक होता है। यह अहंकार यदि छूट जाय तो ज्ञान का उदय हो जाय कि 'सब मैं ही हूँ मुझसे अलग कुछ नही–

'हौं हौं कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई।'
आपुहिं गुण सो आपहिं चेला। आपुहि सब और आपु अकेला।।

'अखरावट' में जायसी ने इस तत्व की अनुभूमित से ही पूर्ण शांति बतायी है–

'सो ज्हं सोडहं बसि जो करई। सौ बूझै, सो धीरज धरई।

इस सोऽहं। (मैं वह हूँ अर्थात् ब्रह्म हूँ) की अद्वैत भावना द्वारा जायसी निर्गुण ब्रह्म पर अपनी आस्था प्रकट कर देते हैं। अन्य सूफी कवि भी उनके अनुयायी हैं।

2. प्रेमः ब्रह्म प्राप्ति एवं भक्ति का सबसे बड़ा साधन

आचार्य शुक्ल ने संत काव्य को 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी भक्ति शाखा' और प्रेम काव्य को जिसे वे सूफी काव्य कहते है' निर्गुण प्रेमाश्रयी भक्ति शाखा' कहा है। इनके इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि संत काव्य में केवल ज्ञान की प्रधानता है और प्रेम काव्य में प्रेम की प्रधानता है। किन्तु ऐसी बात नहीं हैं। दोनों के काव्य में , दोनों की साधना में प्रेम को समान रूप से सर्वोपरि स्थान दिया गया है। कबीर जैसे संतों नें कहीं भी ज्ञान को प्रेम से अधिक महत्व नही दिया है। कबीर का तो स्पष्ट कहना है–

''ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय''

जब गुरू ढाई अक्षर प्रेम के पढ़ा देता है तो फिर पढ़ने को कुछ बाकी नही रह जाता–

‘‘गुरू प्रेम का अंक पढ़ाय दिया।
अब पढ़ने को कछु नहिं बाकी।’’

इस प्रेम की महत्ता निम्न दोहों में और भी स्पष्ट हो उठी है। संतो की भक्ति का क्षेत्र प्रेम का ही क्षेत्र है इसमें प्रवेश आसान नहीं–

‘‘कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माहिं।
‘‘प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहि रूचै, सीस देइलइ जाय।
भगित दुलोहि राम की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नाम।

प्रेम मार्गी कवि तो प्रेम की पीर के प्रचारक हैं। प्रेम उनके लिए सब कुछ है। उनकी भक्ति का एक मात्र साधन प्रेम है। इसी प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए जायसी कहते हैं–

‘‘तीन लोक चौदह खण्ड, सवै परै मोहिं सूझि।
प्रेम छाँड़ि नहिं लेन कुछ किछु, जौ देखा मन बूँझि।

‘‘मुहमद चिनगी प्रेम कै सुनि महि गगन डेराई।
धनि बिरही औधनिहिया, जँह अंस अगिनिसमाइ।
भले ही प्रेम है कठिन दुहेहा, दुइजग तरा प्रेम जेइ खेला।’

3. गुरू महिमा की स्वकृति

संत कवियों एवं प्रेम मार्गी कवियों दोनों में गुरू की महिमा का ज्ञान किया गया है। संत कवियों की दृष्टि में गुरू की महिमा के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं–

''साँचा समरथगुरू मिल्या, तिन तत दिया बताय।
दादू मोह महाबली, सब घृत मथ कर खाय।''

–दादू

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूॅं पॉय।
बलिहारी गुरू आपणे, जिन गोविन्द्र दियो बताय।।

–कबीर

सूफी कवि भी गुरू महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं–

''सैयद असरफ पीर पियारा।
जोहि मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा।।
लेसा हिये प्रेम कर दीया।
उठी जोति या निरमल हीया।।

''गुरू विरह– चिनगी जो मेला।
जो सुलगाइ लेइ सो चेला।'

वस्तुतः गुरू ही साधक की सिद्धि तक पहुँचाने का साधन है। सिद्धि पर ही साध्य से भेंट संभव है। गुरू कृपा से माया या शैतान के व्यवधान भी दूर हो जाते हैं।

4. रहस्यवाद

''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और असैनिक शक्ति से अपना शांत व निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है। यह संबंध यहॉ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।'' यह प्रवृति और संबंध सन्तों और प्रेम मार्गियों में समान है। संत कवि उस स्थिति में पहुँचे हुए हैं जहाँ आत्मा भौतिक बंधनों का बिहष्कार कर, संसार के नियमों का प्रतिकार कर उठती है और उन्नत जीवन में प्रवेश करती है, जहाँ आराधक और आराध्य एक हो जाते हैं। यथा–

''मैं सबनि में औरनि में हूँ सब
मेरी विलगि विलगि विलगायी हो।
कोई कहौ कबीर कोई कहो रामराई हो।

–कबीर

प्रेममार्गी प्रकृति के कण–कण में उस परोक्ष सत्ता की अनुभूमि करते हैं–

''रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानक मोती।।
जहँ जहँ विहँसि सुभावहि हँसी।
तहँ तहँ छिटकि जोति परगासी।।

–जायसी

5. हठ योग का प्रभाव

संतो और प्रेममार्गी दोनों पर नाथपंथियों के हठ योग का समान प्रभाव है। अन्तर केवल इतना है कि संतों ने उनके परिभाषिक शब्दों को नदी व्याख्या देने का प्रयत्न किया है, जबकि सूफियों ने उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों मतो के लोग नाथ पंथ के अनुयायी थे, अतः ऐसा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है– दोनों के उदाहरण प्रस्तुत हैं–

''अरध उरध की गंगा–जमुना, मूल कँवल को घाट।
षड चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट।।

–कबीर

इसमें हठ यौगिक साधना के अन्तर्गत षट्चक्रों की स्थिति का संकेत है। इन षट्चकों –मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धख्य एवं आज्ञाचक्र में स्थापित करता हैं इड़ा पिंगला (गंगा–जमुना) के बीच मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी उत्थापन का सुष्मना नाड़ी द्वारा जो मार्ग है, उसी का यहाँ संकेत है।

जायसी ने एक जगह कहा है कि दसवाँ द्वारा ऊँचे पर है और उलट कर दृष्टि लगाने वाला उसे देख सकता है–

'दसवें दुआर ताल कै लेखा। उलहि दिस्टिलाव सो देखा''

हठ योग प्रदीपिका में कहा गया है कि नासाग्र पर दीख पड़ने वाली ज्योति पर दृष्टि लगा, भौहों को ऊपर उठाकर ध्यान लगाने वाला उन्मनी अवस्था को प्राप्त होता हैं। भ्रुवों के बीच शिव का स्थान है, वहॉ जाकर मन लीन हो जाता है। यह तुरीयावस्था है। यहॉ मृत्यु नहीं पहुँच सकती। इसे ही जायसी ने उलट कर दृष्टि लगाना कहा है।

6. अद्वैत पर आस्था

संत कवि तो अद्वैतवाद पर विश्वास करते ही हैं सूफी कवि भी एकेश्वरवाद से चल कर अद्वैत तक पहुँचे हैं। भले ही इनके सूत्र में 'कुरआन' में मिले हों या भारतीय ज्ञान के सम्पर्क का फल हों। संत कबीर तो एकदम स्पष्ट करते हैं–

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना,यहु तथ कथी गियानी।।'

सूफियों के अनुसार ब्रह्मा और जगत अलग नहीं हैं। जगत की जो अलग सत्ता प्रतीत होती है, वह पारमाथिक नहीं है, अवभास की छायामात्र है। जायसी कहते हैं–

''जब चीन्हा तब और कोई, तन मन जिउ जीवन सब सोई।
हौं हौं कहत धोरव इतराहीं। जब या सिद्ध कहॉ परछाहीं।।''

–जायसी

८. श्रृंगार का उमयपक्षी चित्रण

संतो और सूफियों दोनों ने अलौकिक आलम्बन के होते हुए भी ऋृंगार रस के उभय पक्षों संयोग और विप्रलम्भ का चित्रण किया है। संयोग वर्णन के उदाहरण दृष्टव्य है–

अविकृत–

''किया सिंगार मिलन कै ताई, हरि न मिले जगजीवन गुसाई।''

–जायसी

राम मोर पीव मैं राम की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहरिया।
धनि पिय एकै अंग बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै, कहि अबीर फिर जनमि न आवे।

–कबीर

विकृत–

हुलसे नैन दरस मदमाते। हुसले अधर रंग रस राते।
हुलसा बदन ओप रवि पाई। हुलसि हिय कंयुकि न समाई।।
हुलसे कुच कसनी बंद टूटे। हुलसी भुजा वलय कर टूटे।।
अंग अंग सब हुलसे, कोई कतहुँ न समाइ।
ठाँवहि ठाँव विमोही, गयी मुरछा तनु आइ।।'

विरह का मार्मिक चित्रण

आत्मा का परमात्मा से जब मिलन नहीं हो पाता, तब उसे चैन कहाँ। प्रियतम् के विरह में उसकी विद्वलता अत्यन्त करूण हो उठती है। विरह

जितना तीव्र होगा, प्रिय से मिलन की आकांक्षा भी उतनी ही तीव्र होगी। विरह की यह तीव्रता, व्यापकता और मार्मिकता दोनों काव्य धाराओं में सामन्य रूप से विद्यमान है। सूफियों ने चूँकि अभिव्यक्ति का माध्यम प्रबंध काव्य चुना इस लिए विरह वर्णन के लिये उन्हें व्यापक क्षेत्र मिला। संतो की दृष्टि में जिसके हृदय में बिरह नहीं, वह घर श्मशान के समान है–

''बिरहा बिरहा मत कहौ, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरे, सो घट जान मसान।।'

बिरह–रोदन के बना प्रिपतम की प्राप्ति भी नही–

''कबीर हँसणा दूरि करि, करि रोवण सो चित।
बिन रोया क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त।'

जायसी आदि सूफी संतो का विरह वर्णन तो हिन्दी साहित्य की सम्पदा है–

'' अस पर जरा विरह कर गठा। मेघ साम भये धूम जो उठा।
ढ़ाढ़ा राहु, केतु गादाधा, सूरज जरा, चाँ जरि आधा।।
पिउ सौ कहेउ सँदेसड़ा, है भौंरा हे काग।
सो धनि विरह जरि मुई, तेहि का धुआँ हम्हे लाग।।'

९.भक्ति भावना

दोनों धाराओं के कवियों विशेषकर सूफी कवियों में भक्ति–भावना आराध्य से एकाकार होने का माध्यम है। दोनों साधक है, दोनो का साधन भक्ति भाव है, जिसमें प्रेम का प्राधान्य है। शुक्ल जी कहते है कि ''जायसी मुसलमान थे इससे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जायेगी। पर सूफी मत की आरे पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में सगुणोपासना की सही सहृदयता भी थी। सूफी मत की भक्ति का स्वरूप भी वहीं है जो हमारे यहाँ की भक्ति का नफ्स के साथ जिहाद (धर्मयुद्ध) विरति पक्ष है, जिक्र और मुराकवत (स्मरण और ध्यान (नवधा) भक्ति पक्ष'' फलतः रहस्यवादी प्रणय भावना भक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है।

10. जाति–पाँति के भेद भाव से मुक्ति

संत कवि तो हिन्दू मुस्लिम एकता के समर्थक थे ही। उन्होंने दोनों के एक ऐस मार्ग का प्रवर्तन किया, जो दोनों को स्वीकार्य है। इस प्रकार दोनों ने धार्मिक एकता का सम्पादन करना चाहा, परन्तु प्रेममार्गी सूफी कवियों ने मुसलमान होते हुए भी भारतीय काव्य पद्धति को अपना कर हिन्दू–प्रेम कथाओं और जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया। उन्होंने इस प्रकार सांस्कृतिक एकता की स्थापना में अपूर्व योग दिया।

11. लोक संग्रह की भावना

संत कवियों ने लोक–संग्रह पर सदैव दृष्टि रखी। उन्होंने युगों से शोषित समाज के बीच जागृति का नवीन शंख फूँका। चरित्र पर जोर दिया। मानवता बाद, अहिंसा और परहित की प्रतिष्ठा को। इसी कारण आज भी कबीर, नानक आदि संतो का भारतीय जनता पर व्यापक प्रभाव है। यही बात सूफी कवियों के लिए भी कही जाती है, उन्होंने अपने प्रबंध काव्यों मे आदर्शो की रक्षा की। लोक मर्यादा का ध्यान रखा। भेद–भाव को पनपने नहीं दिया। इस प्रकार दोनों का एक नवीन समाज की स्थापना में महती योगदान है।

वैषम्य

संत एवं सूफी कवियों में अगर कोई वैषम्य है, तो वह विचार धारा का ही है। सूफी कवि हिन्दू–प्रेम गाथाओं को अपना कर भी इतने कैशल से अपने सिद्धान्तों का विनियोग उसमें करते हैं कि पाठक को तनिक भी नहीं अखरता। यूँकि हिन्दु सगुण के साथ निर्गुण ईश्वर में समान रूप से आस्था रखते हैं, अतः सूफियों से उनका टकराव भी नहीं हो पाता। संत कवि पूर्णतः भारतीय विचारधारा के हैं। सूफी मत का कुछ प्रभाव उनमें है भी तो वह रहस्यवाद और प्रणयानुभूति के क्षेत्र में ही अद्वैतवाद पर आधृत होने से उसकी अनुभूति नहीं हो पाती है। फिर भी जिन विषयों में दोनों का वैषम्य है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1.शास्त्रीय ज्ञान की मान्यता–अमान्यता

संत –काव्य और उसके कवि शास्त्रीय ज्ञान को महता नहीं देते, न ही उसे स्वीकार करते हैं। वे आंखो देखी प्रत्यक्षबात पर या अनुभूति पर विश्वास करते हैं। उनका तो स्पष्ट कहना है–

'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
X x x
'तू कहता कागद लेखी, हौं कहता आँखो की देखी,
X x x
कबीर पढ़ना दूरि करि, पुस्तक देह बहाइ।
बावन आखर सोधि करि, र रै म मै चितलाइ।।

सूफी कवि शास्त्र विरोधी नहीं हैं। जायसी जैसे ज्ञान और सिद्धि के कवि अपने को–

'पंडितन केर पछलगा' बतलाते हैं

2. बहुदेववाद और अवतार वाद

संत कवि बहुदेववाद और अवतार वाद के घोर विरोधी हैं। राम नाम की आराधना करने पर भी वे 'अवतारी दशरथ पुत्र' राम से अपने को पृथक बतलाते हैं–

''राम नाम तिहु लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।

फिर अनेक देवी–देवताओं के आराधन का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। सूफी कवि इस विषय में लोक जीवन के महत्व देते है उकनी नायिकाएँ प्रायः शिव मंदिर में पूजा करने जाती हैं। अन्य देवताओं के महत्व का भी यथास्थान गुणगान हो जाता

है। इस तरह वे पैराणिक हिन्दू समाज का चित्र उतार देते हैं। उनकी धार्मिक भावना आड़े नहीं आती। सन्त कवि कमी ऐसा नही करते।

3.रूढ़ियों अन्ध विश्वासों का विरोध अविरोध

संत कवि रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों का खण्डन करने में भी अग्रणी हैं। ऐसे समय में उनके स्वर में और उग्रता आ जाती है, व्यग्य और तीखा हो जाता है–

‘कांकर पाथर जोड़ के मस्जिद लयी चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरी होय खुदाय।।
X x x
पाथर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहाड़।
या तो तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।
X x x
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल
जे जन बकरी खात हैं ताके कौन हवाल।’’

प्रेममार्गी कवि अपने काव्यों में रूढ़ियों अंधविश्वासों, जादू–टोनो, तन्त्र–मंत्रों आदि का कथानक–रूढ़ियों में प्रयोग आते हैं। उन्हें वह जीवन का सहज अंग मानकर स्वीकार करते हैं। उनके खउन–मउन में उनकी रूचि नहीं।

4.कर्म काण्ड का विरोध

रूढ़ियों और अंधविश्वासों की तरह संत कवि कर्मकाण्डों के भी विरोधी हैं, उन्हें यह ब्राह्मडम्बर लग ता है। इसी से वे इतना जप, तप, तीर्थाटन, व्रत का डट कर विरोध करते हैं, उतना ही रोजा, नमाज, हज आदि को भी अमान्य ठाहराते हैं–

‘न जाने तेरा साहब कैसा है ?
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या सहिब तेरा बहरा है ?
चिउँटी के पग नेवर बाजै, सो भी साहब सुनता है।
पण्डित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।

अन्दर तेरे कपट–कतरनी, गहरी नेव जमाता है।''

सूफी यहाँ भी मौन हैं। कर्मकाण्ड के विरोधी होने पर भारतीय परिवेश की कक्षाओं में वह तटस्थ कलाकार की तरह प्रकृत का चित्र उतारते हैं।

5 प्रणय भावना–भारतीय और फारसी

संतो की प्रणय भावना शुद्ध भारतीय है। उन्होंने अपने आराध्य को प्रियतम के रूप में और स्वयं को प्रतिब्रता पत्नी के रूप में कल्पित किया है। प्रेममार्गी कवियों में विशेषकर सूफियों में ब्रह्म को प्रेमिका के रूप में और साधक को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। यह पद्धति प्रियतम से मिलन की बेला में भी अविकृत (वासना हीन) रहती है जबकि प्रेममार्गी निर्गुण भक्ति धारा के कवियों में लौकिक पात्रों के आधार पर उसे विकृत (वासना ग्रस्त) बना देते हैं। एक का अलौकिक प्रणय सर्वदा निष्कलुश है और दूसरे का लौकिक धरातल पर उतर कर कलुषित हो गया है।

6. प्रकृति भेद

संतो का स्वभाव बड़ा अक्खड़ है, वे मस्तमौला है। कबीर का तो कहना है जिस शरीर रूपी चादर को बड़े–बड़े ऋषि–मुनियों और देवताओं ने भी ओढ़ का मैला कर दिया उसे उन्हों ने जैसा का तैसा स्वच्छ रूप में वापस कर दिया है। इसमें कबीर के अहं भाव की स्पष्ट झलक मिलती है– यथा

'सो चादर सुर–नर– मुनि ओढ़ि – ओढ़ि कै मैली कीन्ही चदरिया।

X x x

दास कबीर जतन से ओढ़िन, ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया।।

X x x

'हम न मरिहै, मरिहै संसारा।''

–कबीर

प्रेममार्गी भक्त कवियों में न तो स्वभाव में अक्खड़ता है, न अहंभाव। वे तो अत्यन्त उदार हैं। मुसलमान हो कर भी मूर्तिपूजक हिन्दूओं की प्रेम गाथाओं का वर्णन करने में उन्हें संकोच नहीं।

7. **प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण मे अन्तर**

संत कवि अपनी दार्शनिक मान्यताओं के संदर्भ में प्रकृति को माया, जड़, अज्ञान समझ कर तिरस्कार करते हैं। उनके लिए संसार कागद की पुड़िया के समान अस्थिर है, वह संतों को भ्रमित करने वाला है। पर प्रेममार्गी भक्त कवियों के लिए संसार ब्रह्म के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब है। प्रकृति के कण –कण में वह उस अपरूप की छवि का वर्णन करते है। रवि, ससि, नरबत सभी में उसी की दीप्ति व्याप्त है। कहीं वह साधक के रूप में भी चित्रित हुई है–

''सरवर रूप विभोहा, हिये हिलोरहि लेई।
पाँव छुवै मकु पावौं, एहि मिस लहरहिं देई।।''

8. **भाषा वैभिन्य**

संत कवियों की भाषा सधुक्कड़ी है। उनमें विभिन्न प्रदेशों की शब्दावली की छाप है। इस्लाम के प्रभाव के कारण अरबी –फारसी के शब्दों का भी यथेष्ट प्रयोग है। सूफी प्रमाख्यानक काव्य की भाषा अवधी है, कुछ प्रेमाख्यानों की राजस्थानी और पिंगल है। उनकी भाषा खिचड़ी भाषा नहीं है। सूफी कवियों की भाषा तो इतनी आदर्श रही कि बाद में तुलसी ने अपने रामचरित मानस जैसे ग्रंथ की रचना की।

9 **शिल्प गत–भेद**

संतो ने अपने काव्य का सृजन मुक्तक शैली में किया है और सूफी कवियों ने प्रबंध काव्यों को अपनाया। इससे दोनों के शिल्प में अन्तर आ गया। संत कवि अपनी बात सहज भाव से कहते हैं, उन्हें अलंकार की चिन्ता नहीं,

किन्तु प्रेमाख्यान कवियों की दृष्टि कला पक्ष की ओर भी रही। इसी से छन्द, अलंकार और रस का निर्वाह अनेक काव्य में चरम उत्कर्ष में हुआ है।

10. **<u>प्रतीक योजना</u>**–

संतो और प्रेम मार्गी कवियों की प्रतीक योजना भी भिन्न प्रकार की है। संतों ने इस क्षेत्र में वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों से प्रेरणा ग्रहण की और उनके अधिकांश प्रतीकों को ग्रहण किया, ये प्रतीक या तो योग साधनात्मक पारिभाषिक शब्दों के हैं या संख्यावाची शब्दों के या रूपक, अन्योक्ति आदि अलंकारों के माध्यम से भावों को अभिव्यक्त करने के लिए अपनाए गए हैं जैसे–

‘दुलहिनी गावहु मंगलचार’ इसमें ‘दुलहिन’ आत्मा की प्रतीक है। किन्तु सूफी कवियों ने कथा के माध्यम से अपने सैद्धान्तिक पक्ष को प्रकट करने के लिए उनका प्रयोग किया है। जैसे जायसी ने ’पद्‌भावत’ के आध्यात्मिक पक्ष को प्रकट करने के लिए **तन चितउर मन राजा कीन्हा’** में प्रतीकों का उपयोग किया है।

संतों ने प्रतीक योजना के आधार पर उलट बाँसियाँ भी लिखी है। प्रेम मार्गी कवियों ने इनका प्रयोग नहीं किया।

11. **<u>नारी के प्रति दृष्टि कोण</u>**–

संत कवियों की नजर में नारी के दो रूप हैं– (1) माया की प्रतीक और (2) साधक के लिए प्रतिव्रता के रूप में आदर्श–

‘‘नारी की छाया परत अंधा होत भुजंग।
कबीर तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।’’

और

‘‘पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
प्रतिव्रता के रूप पर वारों कोटि सरूप।।

सूफी काव्य में नारी को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। वह परमात्मा की प्रतीक है। उसका सौन्दर्य दिव्य सौन्दर्य की ही प्रतिक्ष्छाया है। पं0 परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार –''सूफी कवियों ने नारी को अपनी प्रेम साधना के साध्य के रूप में स्वीकार किया है। जिसके कारण वह इनके यहाँ केवल किसी प्रेमी लौकिक जीवन की वस्तु नही रह जाती''।

इस प्रकार संत काव्य और प्रेम काव्य के साम्य और वैषम्य दोनों ही हैं। दोनों की निर्गुण भक्ति की दो धाराएँ हैं जो साहित्य रसिकों को समान रूप से तृत्प करती हैं।

संत काव्य और प्रेम काव्य कवित्व की दृष्टि से तुलना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संत काव्य और प्रेमकाव्य का अद्वितीय स्थान है। अनेक विद्वानों का तो यह कथन है कि हिन्दी काव्य का वास्तविक आरम्भ संत काव्य से ही हुआ है। प्रेम काव्य संत काव्य के परवर्ती हैं। उसने संत काव्य से पृथक शैली अपना कर काव्य के उत्कर्ष के लिए अभिनव द्वारा खोल दिये। काव्य की दृष्टि से दोनों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि जितना अधिक विस्तृत क्षेत्र प्रेम काव्य को प्राप्त हुआ, उतना संत काव्य को नही। संत कवि अन्तःसाधना पर बल देते हैं। यदि सामाजिक अन्याय, अत्याचार और भेद–भाव के प्रति उनके मन में विरोध की भावना उग्र न होती तो उनका क्षेत्र और सीमित हो कर रह जाता। सूफियों ने जो लौकिक प्रेम कथाएँ चुनी, वे जीवन के विस्तृत क्षेत्र को लेकर चलती थीं, फलतः अपने काव्यों में वे विभिन्न रसों का आयोजन कर लेते हैं। आगे इसका विचार विशेष रूप से किया जायेगा।

संत काव्य का भाव –पक्ष

संत काव्य में लौकिक प्रेम की अपेक्षा अलौकिक प्रेम की व्यंजना हुई है। अलौकिक प्रेम रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। अतः संत कवियों की मार्मिक उक्तियाँ परोक्ष सत्ता के प्रणय से अभिभूत आत्मा के मिलन और विरह की झाकियाँ प्रस्तुत करती हैं। विरहाकुल आत्मा अपने प्रेमी से विछुड़ कर कैसी तीव्र

पीड़ा अनुभव करती है ओर मिलन पर कैसे आनन्द से खिल उठती है, संत काव्य में इनके मादक चित्र मिलते हैं।

यही प्रणय संत काव्य के भाव पक्ष का मुख्य आधार है। यह प्रणय सबसे अधिक तीव्रता से कबीर में ही व्यंजित हुआ है। यही प्रणय लौकिक रूपकों के आधार पर अभिव्यक्त हो पाठकों और श्रोताओं को एक दिव्य भान भूमि पर ले जाता है। कबीर ने उसे दाम्पत्य का धरातल प्रदान किया। उनके उस दाम्पत्य प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता पवित्रता, सात्विकता एवं आध्यात्मिकता है। उनमें विरह–मिलन के चित्रों में कहीं भी वासना की गंध नहीं आती। उनका दाम्पत्य संबंध सूफियों के दाम्पत्य संबंध से भिन्न है। कबीर का प्रेम पति–पत्नी का पवित्र प्रेम है, जो शास्त्रीय विधि से विवाह हो जाने के पश्चात् हुआ है। वह भी लौकिक विवाह मात्र नहीं है। आत्मा और परमात्मा का विवाह लौकिक हो भी कैसे सकता है? तभी तो इस विवाह से अदभुत प्रेम के आदर्श 'सती' और 'सूरा' हैं। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का अध्यात्मिक संबंध स्थिर हो जाने पर भी यदि आत्मा में किसी प्रकार का विकार शेष रह जाता है तो मिलान नहीं हो पाता। इस परिस्थित में आत्मा –बधु किस प्रकार उद्विग्न और विफल हो उठती है उसका एक चित्र प्रस्तुत है–

किया सिंगा मिलन के ताई, हरि न मिले जग जीवन गुसायी।
हरि मोर पिव मैं राम की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा, सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै, कहे कबीर फिर जनमि न आवै।

X x x

बो दिन कब आवहिंगे माया
जा कारण हम देह धरी है, मिलवौ अंग लगाय।

–कबीर

कबीर अपने राम से निवेदन करते हैं कि आप मेरे घर शीघ्र पधारें, वह कहते हैं कि दुनिया को तो यह विदित हो गया है कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ किन्तु मुझको यह चिन्ता है कि वह प्रेम कैसा जब तक उसमें पूर्व एकात्मकता न

हो ? विरहिणी को प्रिय के अतिरिक्त कोई वस्तु अच्छी नही लगती। घर बाहर कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जिस प्रकार कभी पुरूष को स्त्री की धुन लगी रहती है और प्यासे को पानी की तलाश रहती है, उसी प्रकार वियोगिनी को प्रिय की धुन लगी रहती है।

बाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे।
सबको कहे तुम्हारी नारी, मौकौं इहै अदेह रे।
एक मेक है सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
आन न यावै नींद न आवै, ग्रिह, वन धरे न धीर रे।
ज्यों कामीं को काम पियारा, ज्यों प्यासे को नीर रे।
ऐसे हाल कबीर भए हैं बिन देख जीव जाइ रे।

कबीर ने विरह–अवस्था का जो वर्णन किया है उसमें वियोग की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए जिन परिस्थितियों और प्रसंगों की उद्‌भावना की गयी है, उससे उसमें और मार्मिकता आ गयी है। कबीर जैसे तथ्यवादी कवि ने भाव पक्ष की इस व्यंजन में काव्यगत सुन्दर वर्णन किया है–

''तलकै बिन बालम मोर जिया।
'दिन नहीं चैन, रात नहीं निंदिया, तलफ–तलक के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोले, सून सेज पर जनम द्विया।
नैन थकित भये पंथ न सूझै, सोई बेदरदी सुध न लिया।'
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरि पीर दुख जोर किया।'

इसी पकार बसंत आगमन पर विरहिणी की पीड़ा बढ़ जाती है, उस समय उसकी तड़पन शरीर की सीमा तोड़कर अपने प्रिय से मिलने के लिए अधीर हो उठती है। फागुन में उसकी दशा कैसी मिलनातुर हो उठती है, कबीर की इन पक्तियों उसकी एक झलक प्रस्तुत है–

''रितु फागुन निपरानी हो,
कोई पिया से मिलावे।''

कबीर के समान ही संत कवि दादू का अन्तर भी कराह रहा है–

''प्रीत जु मेरे पीव को, पैगी पंजर माँहि।
रोम रोम पीव पीव करै, दादू दूसर नाहि।
दादू नैन हमारे बावरे, रोवें नहीं दिन रात।
साई संग न जाग री, पीव क्यों पूछे बात।''

– दादू

श्रृंगार की भावनाओं के साथ–साथ संत काव्य में वीर रस की भी झलक दिख जाती है। वीर भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं–युद्ध वीर, धर्मवीर, दानवीर, कर्मवीर और दयावीर। संत कवि भी रूढ़ियों ओर कुसंस्कारों की विशाल वाहिनी से आजीवन जूझते रहे। उनकी ज्ञान की शमशीर एक पल भी नहीं रूकी। सामाजिक अन्याय के विरूद्ध वे डटे रहे। उनका तो स्पष्ट कहना है–

''एक समसेर इक सार बजती रहै।
खेल कोई सूरया संत झेलै।
कामदल जीति करि, क्रोध पै माल करि
परम सुख धाम तहँ सुरति मेलै।
सील से नेह करि ज्ञान की खड्ग लै
आय चौगान में खेल खैले।'
कहे कबीर सोई सन्त जन सूरमा
सीस को सौंप करि करम ठेलें''

–कबीर

संसार के जीवों को भटकता देखकर संत करूणा से कातर नहीं हो जाते ये बल्कि और भी कठोर होकर उसे फटकार बताते थे। वे प्रह्लाद की भाँति सर्व जगत के पाव को अपने उपर लेने की इच्छा से ही विचलित नहीं हो पड़ते थे बल्कि और भी कठोर और शुष्क होकर सुरत और निरत का उपदेश देते थे। संसार में भरमने वालों पर दया कैसी, मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने वालों को आराम कहाँ? करम की मेख पर रेख न मार सका तो संत कैस?–

''ज्ञान का गेंद कर सुर्त का दण्ड कर

खेल चौगान मैदान माँहि।
जगत का भरमाना छोड़ दे बालके
आय जा भेष–भगत पाँटी।।
शेष के शीष पर चरन डारे
कामदल जीत कै, कँवल दल सोधि कै
ब्रह्म को बोधि के क्रोध मारै।
पदम आसन करै पौन परिचै करै
गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कबीर कोई संतजन जौहरी
करम की रेखा पर मेख मारै।''

–कबीर

भक्ति भावना, सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष शील प्रवृत्ति, धर्म विभेद की निरर्थकता आदि विषयों में संत कवियों का स्वर अत्यन्त सशक्त है। इस प्रकार सभी दृष्टि से संत काव्य का भाव पक्ष सबल है।

<u>संत काव्य का कला पक्ष</u>–

संत कवियों ने मात्र मुक्तक शैली को अपनाया है। गेय शैली के पदें में छः तत्वों – (1) भावात्मकता (2) व्यक्तिकता (3) संगीतात्मकता (4) शैली की मधुरता (5) संक्षिप्तता और (6) मुक्तक शैली का निर्वाह उनके काव्य में हुआ है। उक्त सभी विशेषताएँ उक्त निम्न पद में देखी जा सकती हैं–

''हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या
रहे आजाद या जग में, हमें दुनिया से यारी क्या।
जो बिछुड़े है पियारे से, भटकते दर बदर फिरते
हमारा यार है हममें, हमन को इन्तजारी क्या।
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है
हमर गुरूनाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या।

संतों की प्रतीक योजना और उलट बाँसियों द्वारा भी अपने काव्य को गूढ़ बनाना चाहा है। यह प्रवृति उन्हें ब्रजयानी सिद्धों से प्राप्त हुई थी। प्रतीक और उलटबाँसी

के साथ उनके काव्य में अन्योक्ति और समायोक्ति अलंकारों का प्रचुर उपयोग हुआ है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''काहे री नलनी तू कुम्हलानी, तेरे नाल सरोवार पानी।
जल में उत्पत्ति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपति न ऊपर आग, तोर हेतु कछु कासन लाग।
कहत कबीर जो उदक समान, ते नहीं मुए हमरे जान।
जा कारण मैं ढूँढ़ती, सन मुख्र मिलिया आय।
धनि मैली पीव ऊजला, लागि ने सक्के पाय।'

शब्दगत, रसगत अलंकार गत और गुणरात रमणीयता के दर्शन भी इनके काव्य में होते हैं। संतों ने किसी एक भाषा का उपयोग नहीं किया हैं उनकी बानियों में हिन्दी, उुर्द, फारसी आदि भाषाओं के शब्द मिलते है साथ ही खड़ीबोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मराठी आदि उपभाषाओं के शब्द भी यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं। फिर भी उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह हे कि वह अनके विषमानुकूल भावाभिव्यक्ति में सक्षम है। इसी कारण वह कहीं–कहीं सीधी–सीधी, कहीं संकेतात्मक, कही प्रतीकात्मक, कही पारिभाषिक हो गयी है। उन्होंने जो कुछ भी कहना चाहा, सरलता से कह दिया। छन्द की दृष्टि से संतों ने अधिकांश सधुक्कड़ी छन्दों का प्रयोग किया है। इसमें सबसे प्रमुख–साखी, सबद और रमैनी हैं। इसके अतिरिक्त चौंतीसी, विप्र बत्तीसी, कहरा हिंडोला, बसंत, चाचर आदि छन्दों का प्रयोग भी संत–काव्य में हुआ है।

प्रेम काव्य का भाव पक्ष–

प्रेम काव्यों का मूल कथ्य ही प्रेम है किन्तु यहाँ उसका एक ही रूप नहीं है। रचना के द्विविध भेद के कारण उसके भी दो रूप हैं। जो काव्य भारतीय प्रयाख्यानक परम्परा के अन्तर्गत लिखे गए हैं, उनमें प्रेम का रूप स्वच्छन्द है। किन्तु सूफी कवियों के प्रेम काव्यों में हमे संतो जैसे अलौकिक प्रेम के दर्शन भी होते है। उनमें एक ओर तो श्रृंगार रस के अन्तर्गत विशुद्ध लौकिक प्रणय के चित्र मिलते हैं तो दूसरी ओर अलौकिक प्रेम के दर्शन भी होते हैं। इन कार्यो का

धरातल विस्तृत है। शिल्प की प्रबंधों को लेकर चला है। इससे श्रृंगाररस के रूप में 'रीति' भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। संयोग और वियोग दोनों ही भाव परिपुष्ट हैं। इतना ही नहीं कथा काव्य होने से इनमें जीवन के सभी क्षेत्रों का समावेश है।

जिस प्रकार कबीर का काव्य उच्च कोटि की है। उसी प्रकार सूफी संत जायसी का प्रेम–काव्य भी। उनके 'वद्मावत' में प्रेम काव्य की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। वैसे तो उनके काव्य में वियोग–वर्णन को प्राधान्य है, परन्तु संयोग के चित्र भी कलात्मक है। जिस प्रकार विप्रलम्भ के उद्दीपन के लिए कवि ने बारहमासा लिखा है, वैसे ही संयोग श्रृंगार के लिए षड्ऋतु वर्णन है। राजा रतन सेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती को पावस की शोभा का कैसा अनुभव हो रहा है दृष्टव्य है–

''पद्मावती चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सोहाई।
चमकै बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।।
रंगराती प्रीतम संग जागी। गरजे गगन चौंकि गर लागी।
सीतल बूँद ऊँच चौबारा। हरियर सब देखाई संसारा।'

पद्मावती के लिए पावस ऋतु अतुल सुखदायी और मत्त बना देने वाली है तो नागमती के लिए प्राण हारक है–

''सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसंभी चोला।
हिय हिडोल अस डोलै मोरा। विरह झुलाई देह झकझोरो।
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर या फिरै बँभीरी।
जग जल बूड. जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी।'

नागमती का यह विरह वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। पद्मावत में जायसी का प्रेम–वर्णन जगह–जगह लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर भी संकेत करता है। आचार्य शुक्ल का इस संबंध में कहना है कि ''एक प्रबंध के भीतर शुद्ध भाव के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबंधों से परे

होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखायी पड़े जायसी का प्रमुख लक्ष्य है। क्या संयोग क्या वियोग, दोनों में कवि के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है। जगत के समस्त व्यापार जिसकी छाया प्रतीत होते है।'' यथा–

''विरह के आगि सूरि जरि कांपा। रतिउ दिवस जरै ओहि तापा''

लौकिक वर्णन करते–करते कवि की दृष्टि कैसे उस चरम सौन्दर्य की ओर जा पड़ती है।

यह रूप सौर्न्य के वर्णन के अन्तर्गत स्पष्ट है–

''उन बानन्ह अस को जो मारा। बेधि कर सगरों संसारा।।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओहि के हने।।
ग ग ग
रवि ससि वरवत दिपहिं ओहि जोति, रतन पदरथ मानिक मोती।

पदभावत में वीर और करूणा रस के दो उदाहरण देखते बनते हैं– पद्मिनी के विलाप पर बादल कैसी क्षात्र प्रतिज्ञा कर रहे हैं–

''जो लगि जियहि न भागहि दोऊ। स्वामि जियत कित जोगिनि होऊ।'
उए अगस्त हस्ति सब गाजा। नीर घटे घर आइहि राजा।
बरखा गए अगस्त के दीठी। परै पलानि तुरंगनि पीठी।
बेधौ राहु छोड़ा बहुँ सूरू। रहै न दुख कर मूल अंकुरू।''
ग ग ग
''रोवहि। रानी तजहिं पराना। नोचहिं बार करहिं खरिहाना।
चूरहिं गिउ अमरन उर हारा। अब कापर हम करब सिंगारा।
जा कहँ कहहिं कै पीऊ। सोई चला, काकर यह जीऊ।
मरै चहहिं पै मरैन पावहिं। उठै आगि सब लोग बुझावहिं।'

इस पकार प्रेम काव्य का भाव पक्ष संत काव्य की अपेक्षा अधिक विस्तार एवं गहराई लिए हुई है। प्रेम काव्य लौकिक और अलौकिक प्रणय की गंगा जमुनी धारायें हैं।

कला पक्ष–

प्रेम मार्गी कवियों ने प्रबंध शैली में अपने काव्य की रचना की है। यह शैली पूर्णरूपेण भारतीय शैली है। इस मसनवी शैली कहना सर्वथा अनुपयुक्त है। इसे भारतीय कथा शैली कहा जा सकता है। प्रबंध काव्य होने के कारण इनमें छन्द, अलंकार, गुण प्रकृति का वर्णन अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है।

संत एवं प्रेम काव्य का महत्व

काव्य की दृष्टि से देखा जाय तो भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों दृष्टियों से प्रेम काव्य संत कवि काव्य से उत्कृष्ट है। उसके अनेक कारण हैं– (1) संत पहले समाज सुधारक है बाद में कवि और भक्त। कविता उनका साधन है साध्य नहीं जबकि प्रेम काव्य के कवियों के लिये वे पहले कवि हैं, भक्त या अन्य कुछ बाद में हैं। (2) संत कवियों का मुख्य विषय भक्ति, अलौकिक प्रेम और सामाजिक अन्याय के प्रति संघर्ष है जबकि प्रेममार्गी कवियों ने लोक प्रचलित कथाओं को अपने काव्य का आधार बनाया। उन्होंने एक ओर कामुकता पूर्ण संयोग के चित्र उकेरे तो दूसरी ओर परोक्ष सत्ता के प्रति अपने प्रेम भाव को दर्शाया। इनको पर्याप्त विस्तार के अवसर मिलै। विस्तृत परिवेश मिला।

फिर भी संत काव्य का महत्व कम नहीं है। उसने साहित्य की दृष्टि से भले ही ऊँचे प्रतिमान न स्थापित किए हों, पर भारत की विशाल जनता पर उनका प्रभाव अमित है।

संतो ने हमारे जीवन, विचार धारा, रहन–सहन सभी पर व्यापक प्रभाव डाला। आज के जनतांत्रिक जागरण की आधार शिला एक दिन उन्होंन ही रखी थी, उसी पर हमारा आज का भवन खड़ा हुआ है।

सन्तों और सूफियों का रहस्यवादः एक तुलना

निर्गुण संतों और निर्गण प्रेममार्गी कवियों के रहस्य वाद को आचार्य शुक्ल ने क्रमशः 'साधनात्मक रहस्यवाद और 'भावात्मक रहस्य वाद' कहा है।

अपने मत को स्पष्ट करते हुए आपने लिखा हे कि 'अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं। आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत की एकता। दोनों मिल कर सर्ववाद की प्रतिष्ठा करते हैं– सर्व खल्विंद ब्रह्म। यद्यपि साधना के क्षेत्र में सूफियों और पुराने ईसाई भक्तों की दृष्टि प्रथम पक्ष पर ही अधिक दिखायी देती है, पर भाव क्षेत्र में जाकर सूफी प्रकृति की नाना विभूतियों में भी उसकी छवि का अनुवाद करते आए हैं।

अद्वैतवाद मूलरूप में एक दार्शनिक सिद्धान्त है; कवि कल्पना या भावना नहीं वह मनुष्य के बुद्धि–प्रयास या तत्व चिन्तन का फल है। वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है अर्थात् जब उसका संचार भाव क्षेत्र में होता है, तब उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। रहस्यवाद दो प्रकार को होता है– भावात्मक और साधनात्मक। हमारे यहाँ का योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। भारववर्ष में साधनात्मक रहस्यवाद ही हठयोग, तन्त्र और रसायन के रूप में प्रचलित था। जिस समय सूफी यहाँ आए उस समय उन्हें रहस्य की प्रवृत्ति हठयोगियों, रसायनियों और तांत्रिकों में दिखायी पड़ी। हठ योग की तो अधिकांश बातों का समावेश उन्होंने अपनी साधना पद्धति में कर लिया। पीछे कबीर ने भारतीय ब्रह्मवाद और सूफियों की प्रेम भावना मिला कर जो 'निर्गुण संतमत' खड़ा किया, उसमें भी 'इला, पिंगला, सुषुरना नाड़ी' तथा भीतरी चक्रों की पूरी चर्चा रही। हठयोगियों या नाथपंथियों की दो मुख्य बातें सूफियों और निर्गुण मत वाले संतो ंको अपने अनुकूल दिखायी पड़ी – (क) रहस्य की प्रवृत्ति और (ख) ईश्वर की केवल मन के भीतर समझना और ढूंढ़ना।

इस्लाम के प्रारम्भिक काल में ही भारत का सिन्ध प्रदेश ऐसे सूफियों का अड्डा रहा जो वहाँ के वेदान्तियों और साधकों के सत्संग से अपने मार्ग की पुष्टि करते रहे। अतः मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हो जाने पर हिन्दुओं और मुसलमानों के समागम से दोनों के लिए एक 'सामान्य भक्ति मार्ग' आविर्भूत हुआ। वह अद्वैती रहस्यवाद को लेकर, जिसमें वेदान्त और सूफी मतों का मेल

था। पहले पहल नामदेव ने फिर रामानन्द के शिष्य कबीर ने सामान्य जनता के बीच इस 'सामान्य भक्तिमार्ग' की अटपटी वाणी सुनाई। नानक, दादू आदि कई साधक इस मार्ग के अनुयायी हुए और निर्गुण संत मत चल पड़ा।

रहस्यवाद का स्फुरण सूफियों में पूरा–पूरा हुआ। कबीर दास जी में जो रहस्यवाद पाया जाता है, वह अधिकतर सूफियों के प्रभाव के कारण। पर कबीर पर इस्लाम के कट्टर एकेश्वर वाद और वेदान्त के मायावाद का रूखा संस्कार भी पूरा–पूरा था। उनमें वाक् चातुर्य था, प्रतिभा थी, पर प्रकृति के प्रसार में भगवान की कला का दर्शन करने वाली भावुकता न थी। इससे रहस्यवाादी परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने के लिए दृश्यों को वे सामने रखते हैं, वे अधिकतर वेदान्त और हठ्योग की बातों के खड़े किये हुए रूपक मात्र होते हैं। अतः कबीर में जो रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्य वाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है। वे सूफियों की भक्ति–भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप–माधुर्य की छाया देखते है और कहीं सारे के सारे प्राकृतिक रूप और व्यापारों को पुरूष के समागम हेतु 'प्रकृति' के ऋृंगार, उत्कंठा या विरह–विकलता के रूप में अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार की भावना पद्‌भावत में मिलती है।''

शुक्ल जी के उक्त मन्तव्य से निम्न निष्कर्ष निकलते हैंः–

1. अद्वैत वाद एक दार्शनिक सिद्धान्त है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है तब उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।
2. भारतीय रहस्यवाद–योग साधना परक है। इसे साधनात्मक रहस्यवाद कहते हैं।
3. कबीर में जो रहस्यवाद है, वह सर्वत्र भावुक कवि का रहस्यवाद नहीं है। रहस्यवादी परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने के लिए वे जिन दृश्यों को

सामने रखते हैं, वे अधिकतर वेदान्त और हठयोग की बातों के खड़े किये हुए रूपक मात्र होते हैं।

4. हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत उच्च कोटि की है।

इन निष्कर्षों में प्रथम दो से तो सहमत हुआ जा सकता है कि के दो रूप (1) भावात्क्म रहस्यवाद और साधनात्मक रहस्यवाद है। इनमें प्रथम सूफी कवियों की देन है और द्वितीय विशुद्ध भारतीय है। किन्तु कबीर के संबंध में शुक्ल जी ने कुछ कहा है उसका कोई तर्क संगत आधार उनके पास नहीं है इसी से अन्य विद्वान उनके मत से सहमत नहीं हो सके। डॉ0 श्याम सुन्दर दास का इस संबंध में कथन है– ''कबीर ने अपनी उक्तियों को काव्य की काट–छांट नहीं दी। उसकी उन्हें जरूरत ही नही थी। कबीर के चित्रों की अनेक रूपता न देखना, उनके साथ अन्याय करना हैं। ब्याह का दृश्य से केई बार लाये हैं। पर उनका रहस्यवाद माधुर्यभाव में ही नही समाप्त हो जाता है– जो उन्हें बिलकुल रूखा समझते, उन्हें उनकी रहस्यवादी उक्तियों को देखना चाहिए–

''कहे री नलिनी! तू कुम्हलानी,

तेरे नाल सरोवर पानी। इत्यादि।''

इसी प्रकार डॉ0 राम कुमार वर्मा का मत है कि 'कबीर एक ओर हिन्दुओं को अद्वैतवाद की क्रोड में पोषित करते हैं तो दूसरी ओर मुसलमानों को सूफी सिद्धान्तों का स्पर्श करते है। वे हिन्दु और मुसलमानों को दूध और पानी की तरह मिला देना चाहते थे। इसी कारण रहस्यवाद में भी उनहोंने अद्वैतवाद ओर सूफी मत की गंगा–जमुना बहा दी। उन्होंने अद्वैत से माया और चिन्तन तथा सूफी मत से प्रेम लेकर अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है। सूफी मन के स्त्री–रूप भगवान की भावना ने अद्वैतवाद के पुरूष रूप भगवान के सामने सिर झुका दिया।''

वस्तुतः आचार्य शुक्ल कबीर जैसे क्रांतिकारी, युग प्रवर्तक व्यक्तित्व से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाये। उनके सामने जो निकर्ष था, उस पर तुलसी के

सिवा किसी और का खरा उतरना संभव न था। फलतः कबीर के साथ न्याय नहीं कर सके।

इस विवेचन की आवश्यकता यहाॅ पर इस लिए आवश्यक प्रतीत होती है क्योंकि इन निुर्गण संतों के दार्शनिक विचारों के बारे में जाने बिना यह कार्य अपूर्ण प्रतीत होगा।

<u>रहस्य वादः अनुभूतियों की तीन भूमियाँ</u>

आत्मा, परमात्मा या जीव ब्रह्म की भावात्मक एक्यता की अनुभूति की तीन भूमियाँ होती है–

1. पहली भूमि वह है जब किसी तत्व ज्ञानी सिद्ध गुरू की कृपा ये साधक आत्मा में उस परोक्ष सत्ता से निकटता, साहचर्य या मिलन की तीव्र इच्छा जगती है। उसे ‘जिज्ञासा’ की आवस्था भी कहते हैं इस अवस्था में साधक सम्पूर्ण विश्व में उस परमतत्व के अनिन्द्य सौन्दर्य का दर्शन करता है और उसे प्राप्त करने की आशा में उससे अनेक प्रकार के संबंध स्थापित करता है। कभी यह सम्बंध तादात्मय भाव से, कभी प्रेमी प्रेमिका भाव से, कभी पिता पुत्र के रूप में यह उसे अपना आराध्य बनाता है। तीब्र विरहवेदना और प्रेमानुभूति की डालों पर ही इस अलौकिक प्रणय का पुष्प खिलने मे समर्थ होता है। जिसमें इन दोनों का अभाव है उसमें सच्चे रहस्यवाद की अनुभूति संभव नहीं है।

2. रहस्यवाद की दूसरी भूमि को सूफी ‘फना’ की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में साधक आत्मा का परमतत्व से साक्षात्कार हो जाता है। अतः इसे परिचय और दर्शन की भूमि भी कही जाता है। साधक के लिए यह अपने प्रिदतम के अलौकिक दर्शन से अभिभूत अतुल आहलाद और अपूर्व आत्मा–विस्मृति में तल्लीनता की अवस्था है।

3. तीसरी भूमि परम तत्व से पूर्ण दातात्मय की अवस्था है। साधक आत्मा के लिए यह जीवन मुक्त परमहंस सी सिद्धावस्था है। इस दशा में ब्रह्म–जीव में कोई भेद नहीं रह जाता। कबीर के शब्दों में यह 'बूँद बिलानी समुद्र में ओर समुद्र बिलान बूँद'' वाली अवस्था है।

रहस्यवाद की तीनों भाव–भूमियाँ निर्गुण संत काव्य एवं

प्रेम काव्य में समान रूप से प्राप्त

भावात्मक और साधनात्मक रहस्यवाद की तीनों भाव भूमियाँ निर्गुण काव्य एवं प्रेम काव्य समानरूप से प्राप्त हैं। भावात्मक रहस्यवाद सर्वत्र सूफी और सन्त काव्य में कभी भी एक जैसा नहीं रहा, क्योंकि साधनात्मक रहस्यवाद के क्षेत्रों में सूफी कवि की सभी जगह भावुक और कवि नहीं रहे। हठ यौगिक साधना के क्षेत्र में सरसता आये भी तो कैसे? अतः यह सापेक्ष समान रूप से दोनों पर लागू होता है विवेचन से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जायेगी।

भावनात्मक रहस्यवाद की भाव भूमि

भावात्मक रहस्यवाद की जिन तीन भूमियों का ऊपर उल्लेख हुआ है, वे तीनों संत काव्य में मिलती हैं। पहली भूमि अनुराग (प्रेम) के उदय की है। यही अनुराग विकसित होकर तीव्र विरह में परिणत हो जाता है। गुरू कृपा से यह अनुराग जागृत होता है। इसी से संत कवियों ने गुरू की अपार महिमा का वर्णन किया है। इस भूमि में आरम्भ में अन्नत के रूप के प्रति जिज्ञासा और उसके सौन्दर्य के प्रति आकर्षण पैदा होता है। गुरू की कृपा से संतों के लोचन खुल गए हैं और उन्हें अनन्त के दर्शन होने लगे हैं–

''सतगुरू की महिमा अनंत, अनन्त किया उपकार।

लोचन अनन्त उधाड़िया, अनन्त दिखावन हार।।

लोचन अनन्त के इस अनन्त सौन्दर्य दर्शन से संतों में अनंत के प्रति गहरे अनुराग का उदय हुआ। गुरू ने जो शब्द–बाण शिष्य के हृदय में मारा,

वह हृदय के अन्दर पूरी तरह बिंध गया। गुरू ने प्रसन्न होकर जो एक प्रसंग कहा उससे प्रेम का बादल बरस पड़ा और संतों के सब अंग उस प्रेम रस में भींग गए–

''सतगुरू साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही है मिलि गया, पड़्या कलेजे छेक।।

–कबीर

और

सतगुरू हमसौं रीझि करि कहना एक प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीज गया सब अंग।।

–कबीर

'कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरस्या आइ।
अन्तरि भीगी आतमां, हरी भई बणराई।।

–कबीर

भरि भरि प्याला प्रेम रस, अपणै हामद पिलाइ।
सद्‌गुरू कै सदके कीया, दादू कबि बलि जाइ।।

–दादू

और

दादू सदगुरू मारे सबद सू निरषि निज गौर।
राम अकेला रहि गया, चीति न आवे और।।

–दादू

अनुराग के उदय होने के बाद प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल आत्मा की विरह–वेदना अत्यन्त व्यापक रूप से संत कवियों में मिलती है–दाम्पत्य प्रेम ही इसका माध्यम बना है यथा–

हिरदै में पावक जरै हेली तपि नैना भए लाल।
आँसू पर आँसू गिरें हेली यही हमारी हाल।
प्रियतम बिन कल न परै, हेली कलकत सब अकुलाहि।

डिगी परूँ सत ना रहो, हेली कब पिय पकरे बाहिं।।

–चरनदास

'कहा करहूँ कइसेरे, तलफइ मेरा जीव।

दादू आतुर बिरहिनी रे कारन पीव।।''

–दादू

ग ग ग

क्या सोवे बावरी, चाला जात बसंत।

चाला जात बसन्त, कन्त न घर में आए।

घृग जीवन में तोर, कान्त बिनु दिवस गँवाए।

गर्व गुमानी नारी फिरै, जोबन मदमाती।

खसम रहा है रूठि, नहि, तू पठवे पाती।।

–पलटू साहब

कबीर के काव्य में यह विरह–वेदना व्यापक रूप में वर्णित हुई है–

''कै विरहिनी कूँ मीच दै, कै आपा दिखराइ।

आठ पहर का दाझणाँ, मो पै सहा न जाइ।।

'बाला आव हमारे गेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे। सबको कहै तुम्हारी नारी, मोको इहै अदंस रे।।

ग ग ग

'मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय ?

समुझि सोचि पग धरौ जतन से, बार बार डगि जाय।

ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।

–कबीर

प्रेम काव्य में भी शिष्य के हृदय में उस अनन्त के प्रति चिनगारी गुरू ही डालता है ओर जो सुलगा लेता है वही चेला है–

'गुरू विरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाई लेइ सो चेला'

गुरू के जगाने पर भी अगर साधक न जागा तो फिर।'

प्रियतम से भेंट संभव नहीं–

'तबहूँ न जाग, गा तू सोई, जागे भेंट, न सोए होई।

प्रेम के उदय हो जाने के बाद उस अनन्त से मिलने की भावना जागृत हो जाती है। किन्तु मिलना सहज नहीं। परिणाम स्वरूप प्रेमी का हृदय विरह–संताप से संतप्त हो उठता है। उसका हृदय ही नहीं समस्त चराचर जगत–सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि उसके वियोग में जलते दिखायी देते हैं–

'विरह के आगि सूर जारि कांपा रातिउ दिवस जरै ओहितापा'

उसकी विरही आत्मा अनजाते में ही पुकारने लगती है–

'कंरल जो विगसा मानसर, बिन जल गयउ सुखाइ।

अबहुँ बेलि फिर पलुहै, जो पिय सींचे आइ।।'

2. द्वितीय भूमि भावात्मक रहस्यवाद की वह है जिसमे भक्त का उस अनन्त सौन्दर्य से परिचय होता है। सूफी इसे 'फना' कहते है। संत कवियो ंमें इसका भी मार्मिक वर्णन है। वर वधु वाले रूपक में यह विवाह जैसी स्थिति है। कबीर के निम्न पद में इसका अत्यन्त आह्लाद पूर्ण वर्णन हुआ है–

'दुलहिनी गावहु मंगल चार।
हमर घर आए हो राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करि हौं, पॉचों तत्व बराती।
रामदेव मोरे पाहनु आए, मैं जोबन मदमाती।।

प्रियतम से इस परिचय का, उनके अनन्त तेज का वखान करना इतना सरल नहीं है। पति के संग जागी हुई सुन्दरी को जैसे आश्चर्य चकित कर देने वाले कौतुक और आह्लाद का अनुभव होता है, कबीर को भी कुछ कुछ वैसा ही अनुभव हो रहा है–

कबीर तेज अनन्त का, मानौ ऊगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुन्दरी, कौतिग दीठा तेणि।

'पति संग जागी सुन्दरी' के लौकिक रूप से आध्यात्मिक अनुभूति की मर्म स्पर्शिता और आह्लादमदता/ व्यंजित करने में पूर्ण सफलता कबीर को मिली है। यह काव्य की उत्कृष्ट शैली है।

दादू ने भी इस सहज रूप अन्नत सौन्दर्य के दर्शन किये है ओर उससे परिचय भी हुआ है किन्तु वह कबीर के समान पति–संग जागी सुन्दरी' जैसे रूपकों से अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त नहीं कर पाते, वे तो उसे कवीर की प्रारम्भिक अवस्था गूँगे के गुड़ के समान बतलाते हैं, परन्तु उन्हें अब उसके सिवा कुछ और नहीं सूझता–

''केते परिख पचि मुए, कीमत कही न जाइ।
दादू सब हैरान है, गूँगे का गुड़ खाइ।।
सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखें एक को, दूजा नाहीं और।।

–दादू

प्रेम मार्गी सूफी कवियों ने भी इस अवस्था का हृदयग्राही वर्णन किया है। पद्मावत में राजा रतनसेन जब अपने साथियों सहित सातवें समुद्र 'मानसरोवर' पर पहुँचता है तब दुख की सारी छाया हट जाती है और आनन्द की कली खिलने लगती है। ब्रह्म की आनन्द मयी ज्योति से साक्षात्कार की घड़ी उस बेला कैसा उल्लास का दृश्य उपस्थित करती है कवि की निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है–

'देवि मानसर रूप सुहावा, हिय हुलास पुरइनि होई छावा।
गा अंधियार रैन मसि छूटी, या भिनसार किरिन रवि फूटी।

'अस्ति–अस्ति'सब साथी बोले अंध जो अहै जो नैन विधि खोले।।

इस साक्षात्कार के बाद साधक को समस्त प्रकृति में अपने प्रियतम के सौन्दर्य के दर्शन होने लगते हैं। प्रत्येक वस्तु उसी के सौन्दर्य के बाण से बिद्ध दिखायी पड़ती है–

''उन्ह बानन अस को जो मारा? बेधि रहा सगरौं संसारा।।
गगन नरवत जाहिं न गने वै सब बान ओहि के हने।।
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाड़देहि सब साखी।।
ग ग ग

'रवि ससि दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानक मोती।।
जहँ जहँ विहंस सुभावहि हँसी। तहँ–तहँ छिटकि जोति परगासी।।

3.रहस्यवाद की तीसरी भूमि मिलन की है, इसे सिद्धावस्था कहते हैं। इस दशा में विरहि आत्मा प्रियतम आत्मा से मिलकर एकाकार हो जाती है। संत कवियों ने इस अवस्था का भी मनोहारी वर्णन किया हैं विरह की अपार पीड़ा सहने के बाद जब प्रियतम से मिलन होता है। तब वह सदैव उसे बांधे रखने का यत्न करती है। उसका एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''अब तोहि न जाने देहूँ राम पियारे।
ज्यौं भावै त्यूँ होहु हमारे।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पायो भाग बड़ो बैठे घर आये।
चरिनन लागि करै बरियाई, प्रेम प्रीति राखौ उरझाई।

–कबीर

मिलन की इस अवस्था में जीवात्मा का मैं और 'तू' का भेद विलीन होने लगता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे **'मै'–''तू'' में और 'तू'–'मैं' में समा रहा है।** यह पूर्ण तादात्म्य की स्थिति है। उसी एकत्व को रैदास ने बड़ी सरलता से वर्णित किया है–

''जब हम होते तब तू नाहीं। अब तू है, मैं नाहीं।
अतल अगम जैसे लहर भइ उदधि, जल केवल जलमाही।

–रैदास

रज्जब इसे यो बयाँ करते हैं–

‘पीत बाइ जब दृष्टि है, तब पीला संसार’
ज्यूँ रज्जब रामहि मिल्यौं बाहरि भीतर राम।।’’

–रज्जब

कबीर की तो यह स्थिति है कि स्वप्न और जागृत दोनों बेला उनका प्रियतम उनके साथ है–

‘‘सोवैं तो सपने मिलै, जगौ तो मन भाहिं।
लोचन राता सुधि हरि, बिछुरत कबहुँ नाहिं।।

–कबीर

बेतो अपने प्रियतम से एक हो गए हैं–

‘‘राम कबीर एक भए हैं, कौन सकै पहचानी’’

सूफी प्रेम मार्गी कवियों ने भी इसी मिलन के मादक चित्र प्रस्तुत किए हैं। पद्मावती रूपी ब्रह्म जिस समय जल क्रीड़ा के लिए ‘मान सरोदक’ पर पहुँचती है ओर वस्त्र उतार कर उसमें प्रवेश करना चाहती है तो साधक रूप सरोवर उसके मिलन से कैसा उल्लसित होता है, जायसी की निम्न पंक्तियों में उसका उल्लास अमर हो गया है यथा–

‘‘कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।।
भा निरमल तिन्ह पायँन्ह परसे। पावा रूप रूप के दर से।।
मलय समीर वास तन आई। या सीतल, गैर तपनि बुझाई।
न जनौ कौन पोन लेइ आवा। पुन्य दसा मैं पाप गंवाना।।
ं ं ं
पावा रूप रूप जस चाहा। ससि मुख जनु दखन होई रहा।।
नयन जो देखा कवँल भा निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा दसन जोति लग हीर।।

–जायसी

साधनात्मक रहस्यवाद की भाव –भूमि–

साधनात्मक रहस्यवाद को हठयोगिक रहस्यवाद भी कहते हैं संत कवियों में इसके भी क्रमशः विकसित रूप मिलते हैं, निम्न विवेचन प्रस्तुत है–

1. साधनात्मक रहस्यवाद की भाव भूमि की कलापूर्ण अभिव्यक्ति कबीर के काव्य में प्राप्त है। इसमें साधक द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर सुषुम्ना –मार्ग से ब्रह्म स्थान को पहुँचाने का उपक्रम साधनात्मक रहस्यवाद की प्रथम भूमि है। इस प्रक्रिया में ब्रह्मस्थल–गगन–गुफा तक पहुँचने में कुण्डलिनी को षड्चक्र भेदन करना पड़ता है। 'पयु[3] और उपस्थ[4] के मध्य त्रिकोण चक्र में स्वयंम् लिंग उपस्थित हैं। इसी लिंग को साढ़े तीन बलमों में घेरकर कुडलिनी सोई हुई है। नाभि के आकुंचन (सिकोड़ना) से वहाँ पर विद्यमान सूर्य में आकुंचन होता है। इसी से कुण्डलिनी संचारित होती है। ऊपर को खिंचने से कुण्डालिनी, जो सुषुम्ना नाड़ी के मुख को रोके हुए है, त्याग देती है। और मन तथा प्राणवायु के साथ सुषुम्ना मार्ग से अर्ध्वागमन करती है। जिस प्रकार सुई पिरोए हुए धागे के साथ वस्त्र के अनेक सूत्रों को पार करती हुई चली जाती है उसी पकार कुण्डलिनी भी षठ्यकों – (1) मूलाधार चक्र[5] (2) स्वाधिष्ठान चक्र[6] (3) मणिपूर चक्र[7](4) अनाहद् चक्र[8] (5) विशुद्ध चक्र (6) आज्ञा चक्र[9] का भेदन करती हुई ब्रह्म के निवास स्थान सहस्रदल कमल में पहुँचती है। सह्दलकमल को कबीर ने सहस्रार चक्र, गगन, गगनमंडल, शून्य, शून्य मंडल, गगन गुफा, गुफा, औंधा कुआँ आदि नाम से पुकारा है। समाधि की परिणति यहीं होती है।

हठयोग को कुण्डलिनी–उत्थापन की यह क्रिया या साधनात्मक रहस्यवाद की प्रथम भूमि ब्रह्म प्राप्ति का प्रथम सोपान है। कबीर ने इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। वे अपने आराध्य, मनमोहन विटठल के प्रति अनुराग प्रदर्शित करते हुए वे कुण्डलिनी–संचारण, षट्चक्र–भेदन आदि द्वारा भँवर गुफा के घाट पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर झरते हुए अमृत रस का पान करने को कहते है–

''मनके मोहन बीठुला, यहुमन लगौ तोहि रे।
चरण कवँल मनमानियां, और न भावै मोहि रे।
षटदल कवँल निवासिया, चहुँ कौं फेटि मिलाई
दहुँ कै बीच समाधिया, तहाँ काल न पासै आइरे।
अष्ट कवंल दल भीतरा, तहाँ दस अंगुल का बीच।
तहाँ दु आदस खोजि ले, जनम होई न भीच रे।
बंक नालि के अन्तरै, पछिम दिसां की बाट।
नीझर झरै रस पीजिए, भँवर गुफा के घाट रे।

'नरहरि सहजै हीजिनि जाना; 'मन रे मन हीं उलटि समाना आदि कबीर के योग संबंधी पद हैं और अनेक साखियाँ इसी साधनात्मक रहस्यवाद की प्रथम भूमि का वर्णन करती हैं।

नाथपंथी हठयोग का प्रभाव सूफी कवियों पर भी बहुत पड़ा हैं उनके सभी नायक अपनी प्रियतमाओं को पाने के लिए जोगी बनकर निकल पड़ते हैं तब वे नाथपंथी कनफटे जोगी का वेश धारण करते हैं। यही नहीं, अपने काव्यों में उन्होंने कथा के बीच में अवसर निकाल कर हठयोग की साधनात्मक प्रक्रियाओं का वर्णन भी किया हैं। जायसी के पद्‌भावत में अनेक ऐसे स्थल हैं। पार्वती महेश खण्ड में महादेव साधक राजा रतनसेन को लक्ष्य प्राप्ति का जो हठयौगिक मार्ग बताते हैं वह साधनात्मक रहस्यवाद के प्रथम सोपान के अन्तर्गत आता है यथा–

गढ़तस बाँक जैसि तोरी काया। पुरूष देखि ओहि कै छाया।
पाइय नाँहि जूझ हठि कीन्हें । जेइ पावा तेइ आपुन्हि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तह फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवं दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँका।
भेदै जाइ सोइ वह घाटीं, जो, लहि भेद, चढ़ै होई चाँटी।
चोर बठ जस सेंधि संवारी। जुआ पैंत जस लाव जुआरी।
जस मरजिया समुंद धंस, हाथ आव तव सीप।
ढूँढ़ि लेइ जो सरग–दुआरी, चढ़ै सो सिंघ दीप।

यहाँ सिंघल गढ़ से शरीर की समता प्रदर्शित करते हुए कवि ने हठ योग साधना से किस प्रकार आत्म साक्षात्कार किया जा सकता है, यह बतलाया है। शरीर रूपी गढ़ का योग-परक अर्थ निम्न प्रकार है-

''इस गढ़ में नौ चक्र हैं। पाँच कोतवाल (काम, क्रोध, मद, लोभ मोह आदि पाँच विकार) उन चक्रो की रक्षा करते हैं अर्थात् किसी को उसका भेदन नही करने देते । दशम द्वार एक गुप्त रन्ध्र है। वहाॅ तक पहुँचने का मार्ग सुषुम्ना बहुत विलक्षण और टेढ़ी है। वहां तो वही पहुँच पाता है जो उसका रहस्य जानकर चींटी की गति से वहाॅ तक धीरे-धीरे चढ़ने की कोशिश करता है। शरीर रूपी गढ़ के अधोभाग में सूर्य कुण्ड है। उस सूर्यकुण्ड से ही सुषुम्ना रूपी सुरंग जाती हैं। मैं तुम्हें बताता हूँ कि उसमें ही होकर मार्ग जाता है। उस सुषुम्ना मार्ग पर चढ़ना कठिन हैं उसमें वही आगे बढ़ पाता है जो चोर की तरह धीरे-धीरे चुपचाप प्रवेश करने की साधना करता है और उस जुआरी की भाँति जो अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। वह भी सुषम्ना साधना से अपना पूर्ण समर्पण कर देता है।

जिस प्रकार मरजिया समुद्र में धंस कर हाथ चलाता है तब वह मोतियों वाली सीप प्राप्त करता है। उसी प्रकार साधक जब कठोर साधना के बल पर सहस्रार रूपी समुद्र में पैठ कर ब्रह्मरन्ध रूपी सीपी की खोज करता है तब कहीं उसे मोती रूपी आत्मतत्व के दर्शन होते है'।[10]

नव पौरी (नव चक्र) - (1) ब्रह्म चक्र (2) स्वाधिष्ठान चक्र (3) नाभिचक्र (4) हृदय चक्र (5) कण्ठ चक्र (6) तालु चक्र (7) भूचक्र (8) निर्वाण चक्र (9) आकाश चक्र। पाँच कोतवाल- काम, क्रोधादि, पाँच विकार या पंचक्लेश-(1) अविद्या (2) अस्मिता (3) राग (4) द्वेष (5) अभिनिवेश। दशम द्वारा- ब्रह्मरन्ध्र)- घाटी (सुषुम्ना, कुण्डलिनी मार्ग) आदि के वर्णनों से हठयौगिक साधना इस दृष्टांत में प्रत्यक्ष है।

इस प्रकार संत कवियों के समान ही सूफी संतों ने भी साधनात्मक रहस्यवाद को अपनाया है।

2. साधनात्मक रहस्यवाद के द्वितीय सोपान में साधक को कुण्डलिकी से रागन –गुफा में पहुँचने, सूर (पिंगला) नाड़ी के चन्द्र (इड़ा) नाड़ी में समा जाने तथा दोनों का सुषुम्ना में प्रवेश कर जाने और ब्रह्मरान्ध्र के झरते अमृत–रस पीने में वही आनन्द मिलता है जो भावात्मक रहस्यवादी को 'फना' की अवस्था में प्रियतम से प्रथम मिलन के समय की अवस्था से मिलता है। कबीर में इस साधना का रूप अपने चरम उत्कर्ष में मिलता है। कबीर के रहस्यवाद को शुष्क और रूखा बताने वाले देखें कि गगन गुफा की आनन्दानुभूति में भी उन्होंने कैसा रस घोल दिया है–

''गगन की गुफा तहाँ गैब का चाँदना,
उदित और अस्त का नाव नाहीं।
दिवस और रैन तहाँ नेक नहिं पाइए,
प्रेम औ परकास के सिन्धु माहीं।
सदा आनन्द दुख दन्दु व्यापै नाहीं,
पूरनानन्द भरपूर देखा।
भर्म और भ्रांति तहाँ नैक आवै नहीं,
कहै कबीर रस एक पे खा।''
'अवध गगन मंडल घर कीजै; 'अवधू जोगी जग कै न्यारा''

'अवधू मेरा मन मतवारा' आदि पदो ंमें साधनात्मक रहस्यवाद का द्वितीय सोपान है।

जासयी के पद्मावत मे ंअनेक स्थलों पर चाँद और सूरज का प्रयोग प्रतीक रूप में किया गया है। उन्होंने रतनसेन को सूरज और पद्मावती को चाँद कहकर दोनों के मिलन, प्रेम और विवाह की बात कही है। यथा–

'सुरूज पुरूष चाँद तुम्ह रानी। अस बरदेव मिलावा   आनी।''
ग   ग   ग
चाँद सुरूज सिउँ होइ बियाहू। वारि विधाँ सब बेधव   राहु।''

ISSN 2347-6869 (E) & ISSN 2347-2146 (P)

चाँद और सूज के इन प्रतीको ंपर स्पष्ट रूप से हठ यौगिक प्रभाव है। हठ योग के अनुसार 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्र हैं इन दोनों के योग को हठयोग कहा गया है। (सिद्ध सिद्धान्त पद्धति)

जायसी के सूरज रूप पुरूष रतनसेन और चाँद रूपी स्त्री पद्मावती का मिलन और विवाह निश्चय ही हठयोग की प्रक्रिया-सूर्य नाड़ी (पिंगला) का चन्द्र नाड़ी (इड़ा) में समा जाना- से प्रभावित है। जिस प्रकार दोनों के मिलन पर योगी आनन्दानुभूति करता है उसी प्रकार सूर्य रूपी रतन सेन और चन्द्र रूपी प्रदमावती को भी मिलन की आनन्दानुभूति हुई है-

''देखा चाँद सूर जस साजा। अष्टो भाव मदन जनु गाजा।
हुलसे नयन दरस मदमाते। हुलसे अधर रंग रस राते।
हुलसा वदन ओप रवि पाई। हुलसि हिया कंचुकी न समाई।
आजु चाँद घर आवा सुरू। आजु सिंगार होई सब चूरू।
अंग अंग सब हुलसे। कोइ कतहुँ न समाइ।

3. साधनात्मक रहस्यवाद का तीसरा सोपान सिद्धावस्था का सूचक है। इस अवस्था में आत्मा-परमात्मा का सम्मिलन यौगिक धरात पर हो जाता है। दुई का भेद पूर्णतः मिट जाता है-

'आत्म लीन अषंडित रामां। कहै कबीर हरि माहिं समाना।''

ग ग ग

मै तैं तैं मैं ए द्वै नाहीं, आपै अकल सकलु घट मांही।''

यौगिक आधार पर 'डिडोलना तहाँ झूले आतमराम' 'अब धटि प्रगट भए रामराई'', अवधू ज्ञान लहरि धुनि माँ डीरे'' आदि पदों में कबीर की इस अवस्था हृदय स्पर्शी वर्णन हुआ है। धरमदास का क पद इस संबंध में दृष्टव्य है-

'झरि लागै मइलिया गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुरी चमकै लहरि उठै सोमा बरिन न जाय।
सून्न महल तै अमृत बरसै प्रेम अनन्द है साधु नहाय।

-धरमदास

संतो की तरह यौगिक साधना द्वारा 'मैं' ओर 'तू' का भेद मिटा कर ब्रह्म जीवन के अद्वैत भाव की व्यंजना सूफी कवियों ने भी की है-

संदर्भ ग्रंथ सूची [illegible]ाल कै लेखा। उलहि दिस्टि जो लाव सो देखा।
जाई सो तहाँ साँस मन बांधी। जसं धंसि लीन्ह कान्ह कालिन्दी।
तू मन नाथु, मारि कै साँसा। जो पै मरहि अवहि' करू नासा।
परगट लोकाचार कहु बाता। गुपुत्र ताउमन जासौ राता।
हौं हौं कहत सबै मति खोई। जौं तू नाहिं आहि सब कोई।
आपुहिं गुरू सों आपुहिं चेला। आपुहिं सब औ आपु अकेला।
आपुहिं मीच जि जयन पुनि, आपुहिं तन मन सोइ।
आपुहिं आप करै जो चाहै, कहाँ सो दूसर कोई।

–जायसी

इसी प्राकर 'इन्द्रावती' में नूरमुहम्मद ने भी कहा है –

'आपूहिं माली आपुहिं फूला। आपुहिं भंवर फूल पर भूला।
आपहिं रूपवन्त सो होइ। प्रेम होई रीझत है सोइ।
दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) खोलने की चर्चा उसने भी की हैं–
'दसई द्वार न खोलत कोई। तब खोलै जब मरमी होई।''

इस प्रकार हिन्दी के संत और सूफी कवियों में भावात्मक और साधनात्मक रहस्यवाद के सभी रूप मिल जाते हैं। दोनों ही मध्य कालीन रहस्यवादी काव्य के उच्च गिरि शिखर हैं। सूफी कवियों का रहस्यवाद विस्तृत परिवेश को लेकर चला है और उसमें भावुकता का पुट भी अधिक है किन्तु विशुद्ध रहस्यवादी दृष्टि से संतो का रहस्यवाद भी अनुपम है यदि यह सूफियों से श्रेष्ठ नहीं तो हीन भी नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–जायसी ग्रंथावली–भूमिका

2.डॉ0 त्रिगुणायत–पद्भावत का शास्त्रीयभाष्य –पृ0–283

3.पायु–गुदा

4.मूत्रन्द्रिय, 5. लिंग मूल, 6.नाभिमूल

7.हृदय में स्थित

8.कंठ स्थान

9.भ्रुवों मध्य में अवस्थित।

10.डॉ0 त्रिगुबायत पद्भावत का शास्त्रीय भाष्य– पृ0–283

*डॉ0 आभा रानी, रांची विश्वविद्यालय रांची के अंगीभूत एस एस मेमोरियल कॉलेज के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा हैंतथा उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान साहित्यकार निर्दर्शिनी में सम्मिलित समकालीन हिन्दी साहित्यकार हैं |